

Chapter तीस

भगवान् कपिल द्वारा विपरीत कर्मों का वर्णन

कपिल उवाच

तस्यैतस्य जनो नूनं नायं वेदोरुविक्रमम् ।

काल्यमानोऽपि बलिनो वायोरिव घनावलिः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

कपिलः उवाच—कपिल ने कहा; तस्य एतस्य—इसी काल का; जनः—व्यक्ति; नूनम्—निश्चय ही; न—नहीं; अयम्—यह; वेद—जानता है; उरु-विक्रमम्—महान् पराक्रम; काल्यमानः—दूर ले जाया जाकर; अपि—यद्यपि; बलिनः—शक्तिशाली; वायोः—हवा द्वारा; इव—सदृश; घन—बादलों का; आवलिः—समूह ।

भगवान् ने कहा : जिस प्रकार बादलों का समूह वायु के शक्तिशाली प्रभाव से परिचित नहीं रहता उसी प्रकार भौतिक चेतना में संलग्न व्यक्ति काल की उस महान् शक्ति से परिचित नहीं रहता, जिसके द्वारा उसे ले जाया जा रहा है ।

तात्पर्य : महान् राजनीतिज्ञ पंडित चाणक्य ने कहा है कि यदि कोई लाखों डालर भी खर्च करने को तैयार हो तो भी एक क्षण का समय (काल) वापस नहीं पाया जा सकता । अमूल्य समय को बर्बाद करने से अकल्पनीय क्षति होती है । मनुष्य के पास जितना समय है उसे भौतिक या आध्यात्मिक कार्यों में सावधानी के साथ लगाना चाहिए । बद्धजीव शरीर विशेष में एक निश्चित काल तक रहता है और उसी अल्पावधि में मनुष्य को कृष्णभक्ति पूरी करके काल के प्रभाव से छुटकारा पाना है । किन्तु दुर्भाग्यवश जो कृष्णभावनामृत में अपने को नहीं लगाते, वे अनजाने ही काल की प्रबल शक्ति के द्वारा उसी प्रकार बहा ले जाये जाते हैं जिस प्रकार वायु के द्वारा बादल ।

यं यमर्थमुपादत्ते दुःखेन सुखहेतवे ।

तं तं धुनोति भगवान्पुमाञ्छोचति यत्कृते ॥ २ ॥

शब्दार्थ

यम् यम्—जो कुछ, जिस जिस; अर्थम्—वस्तु को; उपादत्ते—प्राप्त करता है; दुःखेन—कठिनाई से; सुख-हेतवे—सुख के लिए; तम् तम्—उस उस को; धुनोति—नष्ट कर देता है; भगवान्—भगवान्; पुमान्—व्यक्ति; शोचति—शोक करता है; यत्-कृते—जिस कारण से ।

तथाकथित सुख के लिए भौतिकतावादी द्वारा जो-जो वस्तुएँ अत्यन्त कष्ट तथा

परिश्रम से अर्जित की जाती हैं उन-उन को कालरूप परम पुरुष नष्ट कर देता है और इसके कारण बद्धजीव उन के लिए शोक करता है।

तात्पर्य : भगवान् के प्रतिनिधि-रूप काल का मुख्य कार्य सभी वस्तुओं को नष्ट करना है। भौतिकतावादी लोग भौतिक चेतना के कारण आर्थिक विकास के नाम पर न जाने कितने प्रकार की वस्तुएँ उत्पन्न करने में लगे हुए हैं। वे सोचते हैं कि लोगों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करके वे सुखी होंगे, किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि कालक्रम से उनके द्वारा उत्पन्न की गई सारी वस्तुएँ नष्ट हो जाएँगी। इतिहास हमें बताता है कि इस भूमण्डल पर न जाने कितने शक्तिशाली साम्राज्यों का निर्माण कितने कष्ट तथा अध्यवसाय के फलस्वरूप हुआ था, किन्तु काल के साथ वे सारे के सारे नष्ट हो गये। तो भी ये मूर्ख भौतिकतावादी यह नहीं समझ पाते कि भौतिक आवश्यकता की वस्तुएँ उत्पन्न करने में वे समय का ही अपव्यय कर रहे हैं, क्योंकि ये सारी वस्तुएँ काल के साथ नष्ट हो जाएँगी। शक्ति का यह अपव्यय जनसमूह के अज्ञान के कारण है, जो यह नहीं जानता कि मनुष्य सनातन हैं और उनका कार्य भी सनातन है। वे यह नहीं जानते कि किसी एक प्रकार के शरीर में जीवन की अवधि शाश्वत यात्रा की चमक मात्र है। इस तथ्य को न जानने के कारण वे जीवन की इस क्षणिक चमक को सब कुछ मान बैठते हैं और अपना समय आर्थिक परिस्थितियों के सुधारने में नष्ट कर देते हैं।

यदध्रुवस्य देहस्य सानुबन्धस्य दुर्मतिः ।

ध्रुवाणि मन्यते मोहाद्गृहक्षेत्रवसूनि च ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

यत्—क्योंकि; अध्रुवस्य—क्षणिक; देहस्य—शरीर का; स-अनुबन्धस्य—सम्बन्धियों से; दुर्मतिः—पथभ्रष्ट व्यक्ति; ध्रुवाणि—स्थायी; मन्यते—सोचता है; मोहात्—अज्ञानवश; गृह—घर; क्षेत्र—जमीन; वसूनि—सम्पत्ति; च—तथा।

विभ्रमित भौतिकतावादी व्यक्ति यह नहीं जानता कि उसका अपना यह शरीर अस्थायी है और घर, जमीन तथा सम्पत्ति जो इस शरीर से सम्बन्धित हैं, ये सारे आकर्षण भी क्षणिक हैं। वह अपने अज्ञान के कारण ही हर वस्तु को स्थायी मानता है।

तात्पर्य : भौतिकतावादी सोचता है कि कृष्णभावनामृत में अनुरक्त व्यक्ति सनकी होते हैं,

जो हरे कृष्ण कीर्तन में अपना समय गँवाते हैं, किन्तु यह नहीं सोचता है कि स्वयं पागलपन के गहन अंधकार में है, क्योंकि वह अपने शरीर को स्थायी मान बैठता है। अपने शरीर के साथ ही वह अपने घर, देश, समाज तथा अन्य साज-सज्जा को स्थायी मान लेता है। घर, जमीन आदि को स्थायी मान बैठना माया-मोह कहलाता है। यहाँ पर इसका स्पष्ट उल्लेख हुआ है। मोहाद् गृह-क्षेत्र-वसूनि—मोहवश ही भौतिकतावादी अपने घर, अपनी भूमि तथा अपने धन को स्थायी मानते हैं। इसी मोह से पारिवारिक जीवन, राष्ट्रीय जीवन तथा आर्थिक विकास की वृद्धि हुई है, क्योंकि आधुनिक सभ्यता में ये अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक हैं। किन्तु एक कृष्णभावनाभावित व्यक्ति यह जानता है कि मानव समाज की आर्थिक उन्नति केवल क्षणिक मोह है।

श्रीमद्भागवत में अन्यत्र शरीर को स्व मानना, इस शरीर के साथ सम्बन्धित अन्यों को अपना परिजन मानना तथा अपनी जन्मभूमि को पूज्य मानना आदि, पाशविक सभ्यता की उपज घोषित किया गया है। किन्तु कृष्णभक्त हो जाने पर मनुष्य इन सबका उपयोग भगवान् की सेवा करने में कर सकता है। यह अत्यन्त उपयुक्त योजना है। हर वस्तु कृष्ण से सम्बन्धित है। जब समस्त आर्थिक विकास तथा भौतिक उन्नति का उपयोग कृष्णभक्ति को अग्रसर करने में किया जाता है, तो प्रगतिशील जीवन की एक नवीन अवस्था उदित होती है।

जन्तुर्वै भव एतस्मिन्यां यां योनिमनुब्रजेत् ।

तस्यां तस्यां स लभते निर्वृतिं न विरज्यते ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

जन्तुः—जीव; वै—निश्चय ही; भवे—संसार में; एतस्मिन्—इस; याम् याम्—जिस-जिस; योनिम्—योनि को; अनुब्रजेत्—प्राप्त करता है; तस्याम् तस्याम्—उस उसको; सः—वह; लभते—प्राप्त करता है; निर्वृतिम्—सन्तोष को; न—नहीं; विरज्यते—पराङ्मुख (विरक्त) होता है।

जीव जिस योनि में भी प्रकट होता है, उसको उसी योनि में एक विशेष सन्तोष प्राप्त होता है और वह उस अवस्था में रहने से कभी विमुख नहीं होता।

तात्पर्य : शरीर विशेष चाहे वह कितना ही गर्हित क्यों न हों, उसमें जीव को जो सन्तोष मिलना मोह कहलाता है। उच्चतर स्थिति में रहने वाला मनुष्य निम्न श्रेणी के मनुष्य के

जीवनस्तर के प्रति असन्तुष्ट रह सकता है, किन्तु निम्न श्रेणी का मनुष्य बहिरंगा शक्ति माया के प्रभाव से उसी स्थिति में सन्तुष्ट रहता है। माया के कार्य की दो अवस्थाएँ हैं। पहली प्रक्षेपात्मिका और आवरणात्मिका। आवरणात्मिका का अर्थ है “प्रच्छन्न करने वाली” और प्रक्षेपात्मिका का अर्थ है “नीचे गिराने वाली।” भौतिकतावादी व्यक्ति या पशु जीवन की किसी भी अवस्था में सन्तुष्ट रहता है, क्योंकि उसका ज्ञान माया के प्रभाव से ढका हुआ रहता है। जीवन की निम्न श्रेणी में या निम्न योनियों में इतनी कम चेतना विकसित रहती है कि वह समझ नहीं पाता कि वह सुखी है या दुखी। यह आवरणात्मिका कहलाती है। यहाँ तक कि विष्ठा खाने वाला शूकर अपने में सुखी रहता है, यद्यपि उच्चतर श्रेणी का व्यक्ति यह देखता है कि शूकर विष्ठा खा रहा है। कितना गर्हित है ऐसा जीवन!

नरकस्थोऽपि देहं वै न पुमांस्त्यक्तुमिच्छति ।

नारक्यां निर्वृतौ सत्यां देवमायाविमोहितः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

नरक—नरक में; स्थः—स्थित; अपि—भी; देहम्—शरीर को; वै—निस्सन्देह; न—नहीं; पुमान्—मनुष्य; त्यक्तुम्—छोड़ने के लिए; इच्छति—चाहता है; नारक्याम्—नारकीय, नरकतुल्य; निर्वृतौ—भोग; सत्याम्—रहते हुए; देव-माया—भगवान् की माया से; विमोहितः—मोहग्रस्त।

बद्धजीव अपनी योनि-विशेष में ही सन्तुष्ट रहता है, माया के आवरणात्मक प्रभाव से मोहग्रस्त होकर वह अपने शरीर को त्यागना नहीं चाहता, भले ही वह नरक में क्यों न हो, क्योंकि उसे नारकीय भोग में ही आनन्द मिलता है।

तात्पर्य : कहा जाता है कि एक बार स्वर्ग के राजा इन्द्र को उसके दुर्व्यवहार के लिए उसके गुरु बृहस्पति ने शाप दिया जिससे वह इस लोक में शूकर बन गया। बहुत दिनों के बाद जब ब्रह्मा ने उसे स्वर्ग बुलाना चाहा तब तक शूकर-रूप इन्द्र स्वर्ग का राजसी ठाटबाट भूल चुका था, अतः उसने वहाँ जाने से इनकार कर दिया। यह माया का पाश है। यहाँ तक कि इन्द्र को अपना नैसर्गिक जीवन-स्तर भूल गया और वह शूकर के जीवन-स्तर से सन्तुष्ट था। माया के प्रभाव से बद्धजीव अपने शरीर के प्रति इतना अनुरक्त हो उठता है कि यदि उससे कहा जाय कि, “इस शरीर को त्याग दो, तुम्हें तुरन्त राजा का शरीर दिया जाएगा” तो वह राजी नहीं

होगा। यह आसक्ति समस्त बद्धजीवों को बुरी तरह प्रभावित करती है। भगवान् कृष्ण स्वयं घोषित करते हैं, “इस संसार की प्रत्येक वस्तु का त्याग करो। मेरे पास आओ और मैं तुम्हें सुरक्षा प्रदान करूँगा।” किन्तु हमें यह स्वीकार नहीं है। हम सोचते हैं, “हम बिल्कुल सही हैं। हम कृष्ण की शरण में जाकर उनके धाम वापस क्यों जायँ?” यही मोह या माया है। प्रत्येक प्राणी अपने जीवन-स्तर से सन्तुष्ट रहता है, भले ही वह कितना ही गर्हित क्यों न हो।

आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु ।

निरूढमूलहृदय आत्मानं बहु मन्यते ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

आत्म—शरीर; जाया—पत्नी; सुत—बच्चे; अगार—घर; पशु—पशु; द्रविण—सम्पत्ति; बन्धुषु—मित्रों में; निरूढ-मूल—गहराई तक जड़ें जमाये, प्रगाढ़; हृदयः—उसका हृदय; आत्मानम्—अपने आपको; बहु—बहुत ऊँचा; मन्यते—सोचता है।

मनुष्य को अपने जीवनस्तर के प्रति इस प्रकार का सन्तोष अपने शरीर, पत्नी, घर, सन्तान, पशु, सम्पत्ति तथा मित्रों के प्रति प्रगाढ़ आकर्षण के कारण ही होता है। ऐसी संगति में बद्धजीव अपने आपको पूरी तरह सही मानता है।

तात्पर्य : मानव जीवन की तथाकथित पूर्णता मनगढंत है। इसीलिए कहा जाता है कि कोई भौतिकतावादी कितना ही योग्य क्यों न हो, अयोग्य होता है, क्योंकि वह ऐसे मानसिक स्तर पर डोल रहा होता है, जो उसे क्षणिक जीवन की ओर पुनः खींच लाता है। जो मनुष्य मानसिक तल (मनोधर्म) पर कार्य करता है, वह आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर पाता। ऐसा व्यक्ति पुनः भौतिक जीवन में आ गिरता है। ऐसे समाज, मित्रता तथा प्रेम की संगति में बद्धजीव अपने को पूर्णतया सन्तुष्ट मानता है।

सन्दह्यमानसर्वाङ्ग एषामुद्धहनाधिना ।

करोत्यविरतं मूढो दुरितानि दुराशयः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

सन्दह्यमान—जलते हुए; सर्व—सभी; अङ्गः—उसके अंग; एषाम्—इन परिजनों के; उद्धहन—पालन के लिए; आधिना—चिन्ता से युक्त; करोति—करता है; अविरतम्—सदैव; मूढः—मूर्ख; दुरितानि—पापकर्म; दुराशयः—दुर्बुद्धि।

यद्यपि वह चिन्ता से सदैव जलता रहता है, तो भी ऐसा मूर्ख कभी न पूरी होने वाली आशाओं के लिए सभी प्रकार के अनिष्ट कृत्य करता है, जिससे वह अपने तथाकथित परिवार तथा समाज का भरण-पोषण कर सके।

तात्पर्य : कहा गया है कि आज के समय में जब कलियुग इतना प्रबल है कि प्रत्येक व्यक्ति माया के परिवार की झूठी भेंट स्वीकार करके चिन्ताओं से पूर्ण रहता है। ऐसे में एक महान् साम्राज्य को चलाना उतना कठिन नहीं जितना कि एक छोटे परिवार का पालन करना। हमारा परिवार मायाजनित है, यह कृष्ण लोक के परिवार का विकृत प्रतिबिम्ब है। कृष्ण लोक में भी परिवार, मित्र, समाज, पिता, माता सब कुछ हैं, किन्तु वे नित्य हैं। यहाँ पर हमारे शरीर बदलते ही हमारे पारिवारिक सम्बन्ध बदल जाते हैं। कभी हम मनुष्यों के परिवार में होते हैं, तो कभी देवताओं के परिवार में और कभी कुत्तों-बिल्लियों के परिवार में। परिवार, समाज तथा मित्रता क्षणिक हैं, अतः ये असत् कहलाते हैं। यह कहा जाता है कि जब तक हम इस असत्, क्षणभंगुर अस्थायी समाज तथा परिवार से बँधे रहते हैं तब तक हम चिन्ताओं से घिरे रहते हैं। भौतिकतावादी यह नहीं जानते कि इस संसार में परिवार, समाज तथा मित्रता छाया मात्र हैं और वे उनसे जुड़ जाते हैं। स्वाभाविक है कि उनके हृदय सदा तपते रहते हैं, किन्तु समस्त असुविधाओं के होने पर भी वे ऐसे मिथ्या परिवार बनाये रखने के लिए काम करते हैं, क्योंकि उन्हें कृष्ण के साथ वास्तविक पारिवारिक संगति का कुछ पता नहीं रहता।

आक्षिप्तात्मेन्द्रियः स्त्रीणामसतीनां च मायया ।

रहो रचितयालापैः शिशूनां कलभाषिणाम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

आक्षिप्त—मोहित; आत्म—हृदय; इन्द्रियः—इन्द्रियाँ; स्त्रीणाम्—स्त्रियों का; असतीनाम्—झूठी; च—तथा; मायया—माया के द्वारा; रहः—एकान्त स्थान में; रचितया—प्रदर्शित; आलापैः—बातचीत से; शिशूनाम्—बच्चों के; कल-भाषिणाम्—मीठे-मीठे शब्दों से।

वह उस स्त्री को अपना हृदय तथा इन्द्रियाँ दे बैठता है, जो झूठे ही उसे माया से मोह लेती है। वह उसके साथ एकान्त में आलिंगन तथा संभाषण करता है और अपने छोटे-छोटे बच्चों के मीठे-मीठे बोलों से मुग्ध होता रहता है।

तात्पर्य : माया के राज्य के भीतर पारिवारिक जीवन शाश्वत जीव के लिए बंदीगृह के तुल्य है। बंदीगृह में बन्दी के हथकड़ी-बेड़ी पड़ी रहती हैं। इसी प्रकार बद्धजीव स्त्री के मनोहर सौंदर्य, उसके एकांत आलिंगन तथा प्रेमवार्ता से एवं छोटे-छोटे बच्चों की मधुर वाणी से जकड़ा रहता है। इस तरह वह अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है।

इस श्लोक में *स्त्रीणाम् असतीनाम्* शब्द सूचित करते हैं स्त्री का प्रेम पुरुष के मन को विचलित करने के लिए है। वस्तुतः इस भौतिक जगत में प्रेम कहाँ? स्त्री तथा पुरुष दोनों ही अपनी-अपनी इन्द्रियतृप्ति में लगे रहते हैं। इन्द्रियतृप्ति के लिए स्त्री झूठा प्रेम उत्पन्न करती है और मनुष्य इस झूठे प्रेम से मुग्ध होकर अपने वास्तविक कर्म (धर्म) को भूल जाता है। जब ऐसे संयोग से सन्तान उत्पन्न होती है, तो अगला आकर्षण होता है इन बच्चों की मीठी (तोतली) बोली। घर में स्त्री का प्रेम तथा बच्चों की बोली उसे सुरक्षित बन्दी बना लेते हैं और इस तरह वह अपना घर छोड़ नहीं पाता। वैदिक भाषा में ऐसा व्यक्ति *गृहमेधी* कहलाता है, जिसका अर्थ है “जिसके आकर्षण का केन्द्रबिन्दु घर है।” *गृहस्थ* वह है, जो अपने परिवार, पत्नी तथा बच्चों के साथ रहता है, किन्तु उसका वास्तविक जीवन-लक्ष्य कृष्णभक्ति उत्पन्न करना है। इसलिए मनुष्य को *गृहस्थ* बनने की सलाह दी जाती है, *गृहमेधी* बनने की नहीं। *गृहस्थ* की मुख्य चिन्ता मोह-जनित पारिवारिक जीवन से छूटकर कृष्ण के साथ वास्तविक पारिवारिक जीवन में प्रविष्ट करना है, जबकि *गृहमेधी* का कार्य तथाकथित पारिवारिक जीवन से अपने को जन्म-जन्मान्तर तक बारम्बार बाँधना और निरन्तर माया के अन्धकार में बने रहना है।

गृहेषु कूटधर्मेषु दुःखतन्त्रेष्वतन्द्रितः ।

कुर्वन्दुःखप्रतीकारं सुखवन्मन्यते गृही ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

गृहेषु—पारिवारिक जीवन में; कूट-धर्मेषु—झूठ बोलने के अभ्यास में; दुःख-तन्त्रेषु—दुख फैलाने में; अतन्द्रितः—सावधान; कुर्वन्—करते हुए; दुःख-प्रतीकारम्—दुखों को झेलना; सुख-वत्—सुख की भाँति; मन्यते—सोचते हैं; गृही—गृहस्थ।

आसक्त गृहस्थ कूटनीति तथा राजनीति से पूर्ण अपने पारिवारिक जीवन में रहा

आता है। वह सदैव दुखों का विस्तार करता हुआ और इन्द्रियतृप्ति के कार्यों से नियन्त्रित होकर अपने सारे दुखों के फल को झेलने के लिए कर्म करता है। यदि वह इन दुखों को सफलतापूर्वक झेल लेता है, तो वह अपने को सुखी मानता है।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* में भगवान् स्वयं प्रमाणित करते हैं कि यह संसार कष्टों से पूर्ण नश्वर स्थान है। इस जगत में व्यक्तिगत या पारिवारिक, सामाजिक या राष्ट्रीय सुख का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि कहीं सुख के नाम पर कुछ हो रहा है, तो वह भी मोह है। इस जगत में सुख का अर्थ है दुख के फलों को सफलतापूर्वक झेलना। यह जगत ऐसा बनाया गया है कि जब तक कोई चतुर कूटनीतिज्ञ न हो उसका जीवन असफल रहता है। मानव समाज की बात छोड़ दें, निम्न पशुओं, पक्षियों तथा मधुमक्खियों का समाज तक भोजन, शयन तथा संभोग की शारीरिक आवश्यकताएँ चतुराई से पूरी कर लेता है। मानव समाज में राष्ट्रीय स्तर पर या व्यक्तिगत स्तर पर स्पर्धा चलती है और इसमें सफल होने के प्रयास में सारा मानव समाज कूटनीति से भर जाता है। किन्तु हमें स्मरण रखना चाहिए कि सारी कूटनीति तथा जीवनसंघर्ष में सारी बुद्धि के होते हुए भी सारी वस्तुएँ परमेश्वर की इच्छा होने पर क्षण भर में समाप्त हो जाएँगी। फलतः इस संसार में सुखी बनने के हमारे सारे प्रयास माया द्वारा प्रदत्त छल मात्र हैं।

अर्थैरापादितैर्गुर्व्या हिंसयेतस्ततश्च तान् ।

पुष्पाति येषां पोषेण शेषभुग्यात्यधः स्वयम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

अर्थैः—सम्पत्ति से; आपादितैः—अर्जित; गुर्व्या—महान्; हिंसया—हिंसा से; इतः-ततः—इधर-उधर; च—तथा; तान्—उनको (परिजनों को); पुष्पाति—पालन करता है; येषाम्—जिनके; पोषेण—पालन से; शेष—बचा हुआ; भुक्—भोजन; याति—जाता है; अधः—नीचे की ओर; स्वयम्—स्वयं।

वह इधर-उधर हिंसा करके धन प्राप्त करता है और यद्यपि वह इसे अपने परिवार के भरण-पोषण में लगाता है, किन्तु स्वयं इस प्रकार से खरीदे भोजन का अल्पांश ही ग्रहण करता है। इस तरह वह उन लोगों के लिए नरक जाता है, जिनके लिए उसने अवैध ढंग से धन कमाया था।

तात्पर्य : एक बँगाली कहावत है, “जिस व्यक्ति के लिए मैंने चोरी की वही मुझे चोर

कहता है।” जिन पारिवारिक सदस्यों के लिए मनुष्य अनेक पापकर्म करता है वे उससे कभी प्रसन्न नहीं रहते। मोहवश अनुरक्त व्यक्ति ऐसे पारिवारिक सदस्यों की सेवा करता है, किन्तु इनकी सेवा से उसे जीवन की नारकीय अवस्था में प्रवेश करना होता है। उदाहरणार्थ, कोई चोर अपने परिवार के पालन हेतु कोई वस्तु चुराता है, किन्तु पकड़ा वही जाता है और बन्दी बना लिया जाता है। यही सार है इस जगत का और समाज, मैत्री तथा प्रेम के प्रति आसक्ति का। यद्यपि एक आसक्त पारिवारिक व्यक्ति अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए किसी न किसी तरह से धन कमाने में लगा रहता है, किन्तु वह उतने से अधिक का भोग नहीं कर पाता जितना कि ऐसे पापकर्म किये बिना वह करता। आठ औंस (१ पाव) खाने वाले मनुष्य को लम्बे परिवार का पालन करना होता है और इसके लिए धन कमाना होता है, किन्तु उसे पेटभर खाने से अधिक कुछ नहीं मिलता और कभी-कभी तो उसे परिवार के जूठन पर ही निर्भर रहना पड़ता है। अनुचित साधनों से भी धन कमा कर वह स्वयं जीवन का आनन्द नहीं उठा पाता। यही आवरणात्मिका माया है।

समाज, देश तथा समुदाय की भ्रामक सेवा की प्रक्रिया सर्वत्र एक सरीखी है। यही सिद्धान्त बड़े से बड़े राष्ट्रीय नेताओं पर भी लागू होता है। कभी-कभी ऐसा राष्ट्रीय नेता जिसकी देश-सेवाएँ महान् होती हैं अपने ही देशवासियों द्वारा मार दिया जाता है, क्योंकि उसकी सेवाएँ अनियमित होती हैं। दूसरे शब्दों में, कोई भी व्यक्ति अपने आश्रितों को इस मोहमयी सेवा से सन्तुष्ट नहीं कर सकता। यद्यपि वह इस सेवा से अलग नहीं हो सकता, क्योंकि उसकी स्वाभाविक स्थिति ही सेवक की है। स्वाभाविक दृष्टि से जीव परमेश्वर का अंश है, किन्तु वह भूल जाता है कि उसे परम पुरुष की सेवा करनी है और वह अपना ध्यान अन्यो की सेवा की ओर मोड़ देता है। यह माया कहलाती है। अन्यो की सेवा करते हुए वह झूठे ही अपने को स्वामी मान बैठता है। परिवार का मुखिया अपने को परिवार का स्वामी मानता है अथवा राष्ट्र का नेता अपने को राष्ट्र का स्वामी मानता है, किन्तु वास्तव में वह माया की सेवा करता है और माया की सेवा करने से वह धीरे-धीरे नरक को जाता है। अतः बुद्धिमान मनुष्य को

कृष्णभावनामृत के बिन्दु तक पहुँच कर भगवान् की सेवा में लग जाना चाहिए और अपना सारा जीवन, सारा धन, सारी बुद्धि तथा सारी बोलने की शक्ति उसी में लगा देनी चाहिए।

वार्तायां लुप्यमानायामारब्धायां पुनः पुनः ।

लोभाभिभूतो निःसत्त्वः परार्थे कुरुते स्पृहाम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

वार्तायाम्—उसकी वृत्ति या जीविका के; लुप्यमानायाम्—अवरुद्ध होने पर; आरब्धायाम्—ग्रहण की जाती है; पुनः पुनः—बार-बार; लोभ—लालच से; अभिभूतः—अधीर; निःसत्त्वः—विनष्ट; पर-अर्थ—अन्यों की सम्पत्ति के लिए; कुरुते स्पृहाम्—कामना करता है।

जब उसे अपनी जीविका में प्रतिकूल फल मिलते हैं, तो वह बारम्बार अपने को सुधारने का यत्न करता है, किन्तु जब उसके सारे प्रयास असफल रहते हैं और वह विनष्ट हो जाता है, तो अत्यन्त लोभवश वह अन्यों का धन स्वीकार करता है।

कुटुम्बभरणाकल्पो मन्दभाग्यो वृथोद्यमः ।

श्रिया विहीनः कृपणो ध्यायञ्छ्रिसिति मूढधीः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

कुटुम्ब—अपना परिवार; भरण—पालन करने में; अकल्पः—असमर्थ; मन्द-भाग्यः—अभागा; वृथा—व्यर्थ ही; उद्यमः—जिसका प्रयास; श्रिया—सौंदर्य, धन; विहीनः—रहित; कृपणः—कंजूस; ध्यायन्—शोक करता हुआ; श्रिसिति—आहें भरता है; मूढ—मोहग्रस्त; धीः—बुद्धि वाला।

जब वह अभागा अपने परिवार वालों के भरण-पोषण में असफल होकर समस्त सौन्दर्य से विहीन हो जाता है, तो वह सदैव लम्बी-लम्बी आहें भरता हुआ अपनी विफलता के विषय में सोचता है।

एवं स्वभरणाकल्पं तत्कलत्रादयस्तथा ।

नाद्रियन्ते यथा पूर्वं कीनाशा इव गोजरम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; स्व-भरण—उनको पालने में; अकल्पम्—असमर्थ; तत्—उसकी; कलत्र—पत्नी; आदयः—इत्यादि; तथा—उसी प्रकार; न—नहीं; आद्रियन्ते—आदर करते हैं; यथा—जिस तरह; पूर्वम्—पहले; कीनाशाः—किसान; इव—सदृश; गो-जरम्—पुराना बैल।

उसे अपने पालन-पोषण में असमर्थ देखकर उसकी पत्नी तथा अन्य लोग उसे उसी तरह पहले जैसा सम्मान नहीं प्रदान करते जिस तरह कंजूस किसान अपने बुढ़े तथा थके

बैलों के साथ पहले जैसा व्यवहार नहीं करता।

तात्पर्य : इसी युग में नहीं, अपितु अनादि काल से अपने परिवार में कोई भी ऐसे वृद्ध पुरुष को नहीं चाहता जो कमाता नहीं। यहाँ तक कि वर्तमान युग में कुछ जातियों अथवा राज्यों में बूढ़ों को विष दे दिया जाता है, जिससे वे जितनी जल्दी हो सके मर जाँय। कतिपय मानवभक्षी जातियों में बूढ़े बाबा को खेल-खेल में मारकर उसके माँस की दावत दी जाती है। यहाँ पर उस किसान का उदाहरण दिया गया है, जो अपने उस बूढ़े बैल को नहीं चाहता जिसने काम करने के लायक नहीं रह गया है। इसी प्रकार से परिवार से सम्बद्ध व्यक्ति जब वृद्ध हो जाता है और कमा नहीं सकता तो उसे न तो उसकी पत्नी, पुत्र, पुत्रियाँ चाहते हैं न ही परिजन। फलस्वरूप उसकी उपेक्षा होने लगती है, आदर करने की बात तो दूर रही। अतः यह लाभप्रद होगा कि वृद्धावस्था प्राप्त होने के पूर्व ही पारिवारिक सम्बन्ध तोड़ दिया जाय और भगवान् की शरण ग्रहण की जाय। मनुष्य को चाहिए कि अपने-आपको भगवान् की सेवा में लगा दे जिससे वे उसका भार अपने ऊपर ले सकें और इस तरह वह मनुष्य अपने स्वजनों से उपेक्षित न हो।

तत्राप्यजातनिर्वेदो श्रियमाणः स्वयम्भृतैः ।

जरयोपात्तवैरूप्यो मरणाभिमुखो गृहे ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; अपि—यद्यपि; अजात—उदय नहीं हुई हो; निर्वेदः—विरुचि; श्रियमाणः—पालित होकर; स्वयम्—अपने आपसे; भृतैः—पालित लोगों से; जरया—वृद्धावस्था से; उपात्त—प्राप्त; वैरूप्यः—विरूपता, रूप बिगड़ना; मरण—मृत्यु; अभिमुखः—पास आकर; गृहे—घर में।

मूर्ख पारिवारिक व्यक्ति गृहस्थ जीवन से पराङ्मुख नहीं होता, यद्यपि अब उसका पालन उन लोगों के द्वारा किया जा रहा है, जिन्हें पहले उसने पाला था। वृद्धावस्था के कारण उसका रूप विकृत हो जाता है और वह मृत्यु की तैयारी करने लगता है।

तात्पर्य : पारिवारिक आकर्षण इतना प्रबल होता है कि मनुष्य अपनी वृद्धावस्था में अपने ही परिवार के सदस्यों द्वारा उपेक्षित होने पर भी परिवार के प्रति अपना प्रेम नहीं छोड़ पाता और वह घर में कुत्ते के समान रहा आता है। वैदिक जीवन-शैली में मनुष्य को पारिवारिक

जीवन का परित्याग कर देना था जब वह हट्टा कट्टा हो। अतः सलाह दी जाती है कि अधिक दुर्बल होने तथा भौतिक कार्यों में अत्यधिक निराश होने एवं मरने के पूर्व मनुष्य को चाहिए कि गृहस्थाश्रम त्याग कर जीवन के शेष दिन भगवान् की सेवा में लगाये। अतः वैदिक शास्त्रों में आदेश दिया गया है कि ज्योंही पचास वर्ष की आयु पूरी हो जाय, मनुष्य को चाहिए कि पारिवारिक जीवन त्याग कर जंगल में एकान्त में रहे। अपने को पूरी तरह तैयार कर लेने के बाद संन्यासी होकर वह प्रत्येक व्यक्ति को घर-घर में आध्यात्मिक जीवन का ज्ञान वितरित करे।

आस्तेऽवमत्योपन्यस्तं गृहपाल इवाहरन् ।

आमयाव्यप्रदीप्ताग्निरल्पाहारोऽल्पचेष्टितः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

आस्ते—रहा आता है; अवमत्या—उपेक्षा भाव से; उपन्यस्तम्—जो दिया जाता है; गृह-पालः—कुत्ता; इव—सदृश; आहरन्—खाते हुए; आमयावी—रुग्ण; अप्रदीप्त-अग्निः—अजीर्ण, मन्दाग्न्यता; अल्प—थोड़ा; आहारः—भोजन; अल्प—थोड़ा; चेष्टितः—उसके कार्य।

वह घर पर पालतू कुत्ते की भाँति रह रहा होता है और उपेक्षाभाव से उसे जो भी दिया जाता है, उसे खाता है। अजीर्ण तथा मंदाग्नि जैसी अनेक प्रकार की व्याधियों से ग्रस्त होकर, वह केवल कुछ कौर भोजन करता है और अशक्त होने के कारण कोई भी काम नहीं कर पाता।

तात्पर्य : मृत्यु के पूर्व मनुष्य को रुग्ण तथा असक्त होना पड़ता है और जब उसके परिवार के लोग उसकी उपेक्षा करते हैं, तो उसकी स्थिति एक कुत्ते से भी बदतर हो जाती है, क्योंकि उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अतः वैदिक शास्त्रों का आदेश है कि ऐसी दयनीय स्थिति प्राप्त होने के पूर्व मनुष्य घर त्याग दे और अपने परिवार की जानकारी से दूर मरे। यदि मनुष्य घर छोड़कर परिवार वालों की जानकारी के बिना मरता है, तो इसे महिमामय मृत्यु कहते हैं। किन्तु परिवार से आसक्त व्यक्ति चाहता है कि उसके मरने के बाद भी परिवार वाले उसे एक विशाल जुलूस (शवयात्रा) में ले जायँ, भले ही वह उसे देख न पाये। इस प्रकार यह जाने बिना कि जब वह अपना शरीर छोड़ता है, तो अगले जन्म में उसे कहाँ जाना होगा,

वह प्रसन्न रहता है।

वायुनोत्क्रमतोत्तारः कफसंरुद्धनाडिकः ।

कासश्वासकृतायासः कण्ठे घुरघुरायते ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

वायुना—हवा के द्वारा; उत्क्रमता—बाहर निकलने से; उत्तारः—आँखें; कफ—कफ से; संरुद्ध—सँटी हुई; नाडिकः—श्वास नली; कास—खाँसी; श्वास—साँस लेना; कृत—किया हुआ; आयासः—कठिनाई; कण्ठे—गले में; घुर-घुरायते—घुर-घुर का शब्द करता है।

उस रुग्ण अवस्था में, भीतर से वायु के दबाव के कारण उसकी आँखें बाहर निकल आती हैं और उसकी ग्रंथियाँ कफ से भर जाती हैं। उसे साँस लेने में कठिनाई होती है और गले के भीतर से घुर-घुर की आवाज निकलती है।

शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबन्धुभिः ।

वाच्यमानोऽपि न ब्रूते कालपाशवशं गतः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

शयानः—लेटा हुआ; परिशोचद्भिः—पश्चात्ताप करते हुए; परिवीतः—घिरा हुआ; स्व-बन्धुभिः—अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों से; वाच्यमानः—बोलने के लिए कहे जाने पर; अपि—यद्यपि; न—नहीं; ब्रूते—बोलता है; काल—समय के; पाश—फंदा के; वशम्—वशीभूत; गतः—गया हुआ।

इस प्रकार वह मृत्यु के पाश में बँधकर लेट जाता है, विलाप करते उसके मित्र तथा सम्बन्धी उसे घेर लेते हैं और उन सबसे बोलने की इच्छा करते हुए भी वह बोल नहीं पाता, क्योंकि वह काल के वश में रहता है।

तात्पर्य : जब मनुष्य मृत्युशय्या पर होता है, तो उसके सम्बन्धी शिष्टाचारवश उसके पास आते हैं। कभी-कभी मरने वाले व्यक्ति को “अरे, मेरे पिता! अरे, मेरे मित्र! अरे, मेरे पति”! सम्बोधित करके जोर-जोर से रोते-चिल्लाते हैं। उस दयनीय अवस्था में मरने वाला व्यक्ति उनसे बोलना चाहता है और अपनी इच्छाएँ व्यक्त करना चाहता है, किन्तु वह काल अर्थात् मृत्यु के वश में रहता है, अतः अपने आपको व्यक्त नहीं कर पाता। इससे उसे अकल्पनीय पीड़ा होती है। वह पहले से रुग्ण होने के कारण पीड़ादायक अवस्था में रहता है और उसकी ग्रन्थियाँ तथा गला कफ से अवरुद्ध रहते हैं। वह पहले से विकट स्थिति में रहता है और जब

उसे उसके सम्बन्धी पुकारते हैं, तो उसका शोक बढ़ जाता है।

एवं कुटुम्बभरणे व्यापृतात्माजितेन्द्रियः ।

प्रियते रुदतां स्वानामुरुवेदनयास्तधीः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; कुटुम्ब-भरणे—परिवार का पालन करने में; व्यापृत—तल्लीन; आत्मा—उसका मन; अजित—अनियन्त्रित; इन्द्रियः—उसकी इन्द्रियाँ; प्रियते—मर जाता है; रुदताम्—रोते हुए; स्वानाम्—कुटुम्बियों को; उरु—महान्; वेदनया—पीड़ा से; अस्त—विहीन; धीः—चेतना।

इस प्रकार जो व्यक्ति इन्द्रियों को वश में किये बिना परिवार के भरण-पोषण में लगा रहता है, वह अपने रोते कुटुम्बियों को देखता हुआ अत्यन्त शोक में मरता है। वह अत्यन्त दयनीय अवस्था में, असह्य पीड़ा के साथ, किन्तु चेतना विहीन होकर मरता है।

तात्पर्य : भगवद्गीता में कहा गया है कि मृत्यु के समय मनुष्य उन्हीं विचारों में निमग्न रहता है, जिसका उसने जीवन भर अनुशीलन किया है। जिस व्यक्ति ने जीवन भर अपने परिवार के भरण-पोषण के अतिरिक्त और कुछ न सोचा हो उसके अन्तिम विचारों में पारिवारिक बातें ही रहेंगी। सामान्य व्यक्ति के लिए यह स्वाभाविक स्थिति होती है। सामान्य व्यक्ति अपने भाग्य को नहीं जानता है, वह केवल परिवार का पालन-पोषण करता रहता है। अन्तिम अवस्था में किसी को सन्तोष नहीं होता कि उसने परिवार की आर्थिक दशा कैसे सुधारी, हर एक व्यक्ति यही सोचता है कि मैंने यथेष्ट सेवा नहीं की। परिवार के प्रति प्रगाढ़ स्नेह के कारण वह अपनी इन्द्रियों को वश में करने तथा अपनी आध्यात्मिक चेतना सुधारने के मुख्य कर्तव्य को भूल जाता है। कभी-कभी मरने वाला व्यक्ति परिवार का भार अपने पुत्र या अन्य सम्बन्धी को सौंपते हुए कहता है, “मैं तो जा रहा हूँ, किन्तु तुम परिवार को देखना।” वह यह नहीं जानता कि कहाँ जा रहा है, किन्तु मृत्यु के समय भी वह चिन्तित रहता है कि उसके परिवार का निर्वाह किस तरह होगा। कभी कभी देखा जाता है कि मरने वाला व्यक्ति वैद्य से कुछ ही वर्षों तक आयु बढ़ाने की याचना करता है, जिससे वह परिवार-भरण के लिए प्रारम्भ की गई अपनी योजना पूरी कर सके। बद्धजीव की ये ही व्याधियाँ हैं। वह अपने वास्तविक कार्य—कृष्णभक्ति—को भूल जाता है और अपने परिवार के जीवन-निर्वाह की

योजनाओं में ही लगा रहता है, यद्यपि वह एक-एक करके अपना परिवार बदलता रहता है।

यमदूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ सरभसेक्षणौ ।

स दृष्ट्वा त्रस्तहृदयः शकृन्मूत्रं विमुञ्चति ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

यम-दूतौ—यमराज के दो दूत; तदा—उस समय; प्राप्तौ—आकर; भीमौ—घोर; स-रभस—क्रोध से पूर्ण; ईक्षणौ—अपनी आँखें; सः—वह; दृष्ट्वा—देखकर; त्रस्त—भयभीत; हृदयः—अपना हृदय; शकृत्—मल; मूत्रम्—मूत्र; विमुञ्चति—त्यागता है, निकाल देता है।

मृत्यु के समय उसे अपने समक्ष यमराज के दूत आये दिखते हैं, जिनके नेत्र क्रोध से पूर्ण रहते हैं। इस तरह भय के मारे उसका मल-मूत्र छूट जाता है।

तात्पर्य : वर्तमान शरीर को छोड़ने के बाद जीव का देहान्तरण दो प्रकार से होता है। एक प्रकार का देहान्तरण पापकर्मों के नियामक यमराज के पास जाना है और दूसरा है स्वर्गलोक या वैकुण्ठ को जाना। यहाँ पर भगवान् कपिल बताते हैं कि जो लोग परिवार के पालन-पोषण में व्यस्त रहते हैं उनके साथ यमदूत कैसा व्यवहार करते हैं। मृत्यु के समय, जिन लोगों ने अपनी इन्द्रियों की प्रबल रूप से तुष्टि की है उनके रखवाले यमदूत बनते हैं। वे मरने वाले व्यक्ति को पकड़कर उस लोक में ले जाते हैं जहाँ यमराज निवास करता है। वहाँ की दशाओं का वर्णन अगले श्लोकों में किया गया है।

यातनादेह आवृत्य पाशैर्बद्ध्वा गले बलात् ।

नयतो दीर्घमध्वानं दण्ड्यं राजभटा यथा ॥ २० ॥

शब्दार्थ

यातना—दंड के लिए; देहे—उसका शरीर; आवृत्य—ढक कर; पाशैः—रस्सियों से; बद्ध्वा—बाँध कर; गले—गले से; बलात्—बलपूर्वक; नयतः—ले जाते हैं; दीर्घम्—लम्बी; अध्वानम्—दूरी; दण्ड्यम्—अपराधी; राज-भटाः—राजा के सिपाही; यथा—जिस प्रकार।

जिस प्रकार राज्य के सिपाही अपराधी को दण्डित करने के लिए उसे गिरफ्तार करते हैं उसी प्रकार इन्द्रियतृप्ति में संलग्न अपराधी पुरुष यमदूतों के द्वारा बन्दी बनाया जाता है। वे उसे मजबूत रस्सी से गले से बाँध लेते हैं और उसके सूक्ष्म शरीर को ढक देते हैं जिससे उसे कठोर से कठोर दण्ड दिया जा सके।

तात्पर्य : प्रत्येक जीव सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर से ढका रहता है। सूक्ष्म शरीर मन, अहंकार, बुद्धि तथा चेतना का आवरण है। शास्त्रों का कथन है कि यमराज के सिपाही अपराधी के सूक्ष्म शरीर को ढक कर उसे यमराज के आवास में ले जाते हैं जहाँ उसे इस तरह दण्ड दिया जाता है, जिसे वह सह ले। वह इस दण्ड से मरता नहीं, क्योंकि यदि मर जाय तो फिर दण्ड कौन सहेगा? यमराज के सिपाहियों का काम किसी को मारना नहीं है। वस्तुतः किसी जीव को मारना सम्भव नहीं, क्योंकि वास्तव में वह नित्य है; उसे केवल इन्द्रियतृप्ति के कार्यों का फल भुगतना पड़ता है।

चैतन्य-चरितामृत में दण्ड की विधि वर्णित है। पहले राजा के आदमी उस अपराधी को नौका द्वारा नदी के बीच तक ले जाते हैं। वे उसके बाल पकड़कर उसे पानी में डुबोते हैं और जब उसका दम घुटने लगता है, तो राजा के सिपाही उसे पानी से निकाल कर कुछ समय तक साँस लेने देते हैं और फिर बार-बार उसी तरह से पानी में डुबोते और निकालते हैं। इसी प्रकार का दण्ड यमराज द्वारा विस्मृत जीवों को दिया जाता है, जिसका वर्णन अगले श्लोकों में हुआ है।

तयोर्निर्भिन्नहृदयस्तर्जनैर्जातवेपथुः ।

पथि श्रुभिर्भक्ष्यमाण आर्तोऽघं स्वमनुस्मरन् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तयोः—यम के दूतों की; निर्भिन्न—टूटा हुआ; हृदयः—हृदय; तर्जनैः—डाट-फटकार से; जात—उत्पन्न; वेपथुः—कँप-कँपी; पथि—रास्ते में; श्रुभिः—कुत्तों के द्वारा; भक्ष्यमाणः—काटा जाकर; आर्तः—दुखी; अघम्—पाप; स्वम्—अपना; अनुस्मरन्—स्मरण करते हुए।

इस प्रकार यमराज के सिपाहियों द्वारा ले जाये जाते समय उसे दबाया-कुचला जाता है और उनके हाथों में वह काँपता रहता है। रास्ते में जाते समय उसे कुत्ते काटते हैं और उसे अपने जीवन के पापकर्म याद आते हैं। इस प्रकार वह अत्यधिक दुखी रहता है।

तात्पर्य : इस श्लोक से ऐसा प्रतीत होता है कि इस लोक से यमलोक जाते समय, यमराज के दूतों द्वारा बन्दी बनाये गये अपराधी को मार्ग में कुत्ते मिलते हैं, जो भूकते हैं और उसे इन्द्रियतृप्ति के अपराध कर्मों का स्मरण कराने के लिए काटते हैं। *भगवद्गीता* में कहा

गया है कि जब कोई इन्द्रियतृप्ति की इच्छा से उन्मत्त होता है, तो वह अन्धा हो जाता है और सारा ज्ञान खो देता है। वह सब कुछ भूल जाता है। *कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः*। जब कोई इन्द्रियतृप्ति के प्रति अत्यधिक अनुरक्त होता है, तो उसकी सारी बुद्धि जाती रहती है और वह यह भूल जाता है कि उसको इसका परिणाम भोगना पड़ेगा। यहाँ पर उसे यमराज द्वारा पाले गये कुत्तों से अपने इन्द्रियतृप्ति के कार्यों को स्मरण करने का अवसर मिलता है। जब हम स्थूल शरीर में रहते हैं, तो आजकल के सरकारी नियमों द्वारा भी इन्द्रियतृप्ति के ऐसे कार्यों को बढ़ावा मिलता है। सारे विश्व में प्रत्येक राज्य की सरकारें ऐसे कर्मों को गर्भनिरोध के रूप में प्रोत्साहन देती हैं। स्त्रियों को गोलियाँ दी जाती हैं और गर्भपात कराने के लिए अस्पतालों में जाने की छूट है। वस्तुतः विषयी जीवन अच्छी सन्तान को जन्म देने के लिए है, किन्तु लोगों को अपनी इन्द्रियों पर किसी प्रकार का संयम न होने के कारण तथा इन्द्रियों को वश में करने की शिक्षा देने वाली संस्थाओं के न होने से लोग इन्द्रियतृप्ति के अपराधों के शिकार होते हैं और वे मृत्यु के पश्चात् जिस प्रकार से दण्डित होते हैं उसका वर्णन *भागवत* के इन पृष्ठों में हुआ है।

क्षुत्तृपरीतोऽर्कदवानलानिलैः

सन्तप्यमानः पथि तप्तवालुके ।

कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडितश्च

चलत्यशक्तोऽपि निराश्रमोदके ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

क्षुत्-तृप्—भूख तथा प्यास से; परीतः—व्याकुल; अर्क—सूर्य; दव-अनल—जंगल की अग्नि; अनिलैः—वायु से; सन्तप्यमानः—झुलसते हुए; पथि—रास्ते में; तप्त-वालुके—गर्म बालू पर; कृच्छ्रेण—कष्टपूर्वक; पृष्ठे—पीठ पर; कशया—चाबुक से; च—तथा; ताडितः—मारा जाकर; चलति—चलता है; अशक्तः—असमर्थ; अपि—यद्यपि; निराश्रम-उदके—बिना किसी विश्राम या जल के।

अपराधी को चिलचिलाती धूप में गर्म बालू के रास्ते से होकर जाना पड़ता है, जिसके दोनों ओर दावाग्नि जलती रहती है। चलने में असमर्थता के कारण सिपाही उसकी पीठ पर कोड़े लगाते हैं और वह भूख तथा प्यास से व्याकुल हो जाता है। किन्तु दुर्भाग्यवश रास्ते भर न तो पीने के लिए जल रहता है, न विश्राम करने के लिए कोई आश्रय मिलता है।

तत्र तत्र पतञ्छान्तो मूर्च्छितः पुनरुत्थितः ।

पथा पापीयसा नीतस्तरसा यमसादनम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

तत्र तत्र—जहाँ तहाँ; पतन्—गिरते हुए; श्रान्तः—थका हुआ; मूर्च्छितः—बेहोश; पुनः—फिर से; उत्थितः—उठते हुए; पथा—रास्ते में; पापीयसा—अत्यन्त अशुभ; नीतः—लाया गया; तरसा—तेजी से; यम-सादनम्—यमराज के सामने।

यमराज के धाम के मार्ग पर वह थकान से गिरता-पड़ता जाता है और कभी-कभी अचेत हो जाता है, किन्तु उसे पुनः उठने के लिए बाध्य किया जाता है। इस प्रकार उसे तेजी से यमराज के समक्ष लाया जाता है।

योजनानां सहस्राणि नवतिं नव चाध्वनः ।

त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यां वा नीतः प्राप्नोति यातनाः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

योजनानाम्—योजनों की; सहस्राणि—हजार; नवतिम्—नब्बे; नव—नौ; च—तथा; अध्वनः—दूरी से; त्रिभिः—तीन; मुहूर्तैः—क्षणों में; द्वाभ्याम्—दो; वा—अथवा; नीतः—लाया गया; प्राप्नोति—पाता है; यातनाः—दण्ड।

इस तरह से ९९ हजार योजन की दूरी उसे दो या तीन पलों में पार करनी होती है और फिर तुरन्त उसे घोर यातना दी जाती है, जिसे सहना पड़ता है।

तात्पर्य : एक योजन आठ मील के बराबर होता है, अतः उसे लम्बा रास्ता तय करना होता है, जो लगभग ७,९२,००० मील है। इतनी लम्बी दूरी दो-तीन क्षणों में पार करनी होती है। सिपाही सूक्ष्म शरीर को ढक लेते हैं जिससे जीव इतनी लम्बी दूरी को शीघ्र ही तय कर ले और साथ ही यातनाएँ सहता चले। यह आवरण, यद्यपि भौतिक है, किन्तु ऐसे सूक्ष्म तत्त्वों का होता है कि भौतिकतावादी विज्ञानी पता नहीं लगा पाते कि ये आवरण किस वस्तु के बने हैं। ७,९२,००० मील की यात्रा कुछ ही पलों में पूरी कर लेना आधुनिक अन्तरिक्ष यात्रियों को भी असमंजस में डालने वाला है। अभी तक वे १८,००० मील प्रति घण्टे की चाल से यात्रा कर चुके हैं, किन्तु यहाँ हम देखते हैं कि अपराधी कुछ ही सेकंडों में ७,९२,००० मील की यात्रा करता है और यह कोई आध्यात्मिक विधि नहीं होती, भौतिक होती है।

आदीपनं स्वगात्राणां वेष्टयित्वोल्मुकादिभिः ।
आत्ममांसादनं क्वापि स्वकृत्तं परतोऽपि वा ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

आदीपनम्—अग्नि लगाकर; स्व-गात्राणाम्—अपने अंगों को; वेष्टयित्वा—लपेट कर; उल्मुक-आदिभिः—जलती लकड़ी के टुकड़ों आदि से; आत्म-मांस—अपने मांस का; अदनम्—भोजन करते; क्व अपि—कभी-कभी; स्व-कृत्तम्—अपने द्वारा किया गया; परतः—अन्यों द्वारा; अपि—भी; वा—अथवा ।

वहाँ उसे जलती लकड़ियों के बीच में रख दिया जाता है और उसके अंगों में आग लगा दी जाती है । कभी-कभी उसे अपना मांस स्वयं खाने के लिए बाध्य किया जाता है अथवा अन्यों द्वारा खाने दिया जाता है ।

तात्पर्य : इस श्लोक में तथा अगले तीन श्लोकों में यातनाओं का वर्णन हुआ है । पहला विवरण यह है कि अपराधी को स्वयं आग में पका अपना मांस खाना पड़ता है या अन्य जो वहाँ उपस्थित होते हैं उन्हें खाने देना पड़ता है । पिछले महायुद्ध में, लोगों को यातना-शिविरों में अपना मल खाना पड़ा था, अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं यदि यमराज के निवास 'यमसादन' में अपराधी को, जो कभी दूसरे का मांस खाता है, अपना ही मांस खाना पड़ता हो ।

जीवतश्चान्नाभ्युद्धारः श्वगृधैर्यमसादने ।
सर्पवृश्चिकदंशाद्यैर्दंशद्भिश्चात्मवैशसम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

जीवतः—जीवित; च—तथा; अन्न—आँतें; अभ्युद्धारः—बाहर खींचकर; श्व-गृधैः—कुत्तों तथा गीधों द्वारा; यम-सादने—यमराज के सदन में; सर्प—सर्प; वृश्चिक—बिच्छू; दंश—डाँस, मच्छर; आद्यैः—इत्यादि के द्वारा; दंशद्भिः—काटे जाने पर; च—तथा; आत्म-वैशसम्—अपना उल्पीड़न ।

नरक के कुत्तों तथा गीधों द्वारा उसकी आँखें उसके जीवित रहते और देखते-देखते निकाल ली जाती हैं और उसे साँपों, बिच्छुओं, डाँसों तथा अन्य काटने वाले जन्तुओं से पीड़ा पहुँचाई जाती है ।

कृन्तनं चावयवशो गजादिभ्यो भिदापनम् ।
पातनं गिरिशृङ्गेभ्यो रोधनं चाम्बुगर्तयोः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

कृन्तनम्—काट करके; च—तथा; अवयवशः—अंग प्रति अंग; गज-आदिभ्यः—हाथी आदि से; भिदापनम्—चिरवाया जाकर; पातनम्—नीचे गिराकर; गिरि—पहाड़ियों की; शृङ्गेभ्यः—चोटियों से; रोधनम्—घेर कर; च—तथा; अम्बु-गर्तयोः—जल में या गुफा में ।

फिर उसके अंग-प्रत्यंग काट डाले जाते हैं और उसे हाथियों से चिरवा दिया जाता है। उसे पर्वत की चोटियों से नीचे गिराया जाता है और फिर जल में या गुफा में बन्दी बना लिया जाता है।

यास्तामिस्रान्धतामिस्रा रौरवाद्याश्च यातनाः ।

भुङ्क्ते नरो वा नारी वा मिथः सङ्गेन निर्मिताः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

याः—जो; तामिस्र—नरक का नाम; अन्ध-तामिस्राः—एक नरक; रौरव—एक नरक; आद्याः—इत्यादि; च—तथा; यातनाः—यातनाएँ, दण्ड; भुङ्क्ते—भोगता है; नरः—मनुष्य; वा—अथवा; नारी—स्त्री; वा—अथवा; मिथः—पारस्परिक; सङ्गेन—संगति से; निर्मिताः—बनाये गये।

जिन पुरुषों तथा स्त्रियों का जीवन अवैध यौनाचार में बीतता है उन्हें तामिस्र, अन्धतामिस्र तथा रौरव नामक नरकों में नाना प्रकार की यातनाएँ दी जाती हैं।

तात्पर्य : भौतिकतावादी जीवन विषयी जीवन पर आधारित है। उन समस्त भौतिकतावादी लोगों का जीवन, जो जीवन-संघर्ष में नाना प्रकार की यातनाएँ भोग रहे हैं, कामवासना पर आधारित है। अतः वैदिक सभ्यता में केवल सीमित रूप से विषयी-जीवन की अनुमति दी गई है। यह जीवन विवाहित दम्पति युगल के लिए सन्तानोत्पत्ति के लिए है। किन्तु जब अवैध इन्द्रियतृप्ति के लिए विषयी जीवन का उपयोग किया जाता है, तो स्त्री तथा पुरुष दोनों को इसी संसार में या मरने के बाद कठोर यातना सहनी पड़ती है। इस लोक में उन्हें सिफलिस तथा गोनोरिया जैसे रोगों द्वारा दण्डित होना पड़ता है और अगले जीवन में उन्हें अनेक नारकीय यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं जैसाकि यहाँ पर वर्णन हुआ है। *भगवद्गीता* के प्रथम अध्याय में अवैध विषयी जीवन की अत्यधिक भर्त्सना की गई है और यह कहा गया है कि जो इस प्रकार से सन्तान उत्पन्न करते हैं, वे नरक को जाते हैं। यहाँ पर भागवतम् में इसकी पुष्टि की गई है कि ऐसे अपराधों को तामिस्र, अन्धतामिस्र तथा रौरव नरकों में जीवन बिताना पड़ता है।

अत्रैव नरकः स्वर्ग इति मातः प्रचक्षते ।

या यातना वै नारक्यस्ता इहाप्युपलक्षिताः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

अत्र—इस संसार में; एव—ही; नरकः—नरक; स्वर्गः—स्वर्ग; इति—इस प्रकार; मातः—हे माता; प्रचक्षते—लोग कहते हैं; याः—जो जो; यातनाः—यातनाएँ; वै—निश्चय ही; नारक्यः—नारकीय; ताः—वे; इह—यहाँ; अपि—भी; उपलक्षिताः—दृष्टिगोचर होती हैं।

कपिलमुनि ने आगे कहा : हे माता, कभी-कभी यह कहा जाता है कि इसी लोक में हम नरक अथवा स्वर्ग का अनुभव करते हैं, क्योंकि कभी-कभी इस लोक में भी नारकीय यातनाएँ दिखाई पड़ती हैं।

तात्पर्य : कभी-कभी अविश्वासी लोग नरक सम्बन्धी शास्त्रों के इन कथनों को नहीं मानते। वे ऐसे प्रामाणिक विवरणों की अवहेलना करते हैं। अतः भगवान् कपिल उनकी पुष्टि यह कह कर करते हैं कि ये नारकीय परिस्थितियाँ इस लोक में भी दिखती हैं। ऐसा नहीं कि ये केवल यमराज के निवास करने वाले लोक में ही हों। यमराज के लोक में पापी पुरुष को उन नारकीय परिस्थितियों में रहने का अवसर प्रदान किया जाता है, जो उसे अगले जीवन में सहनी होंगी और फिर उसे दूसरे लोक में यही नारकीय जीवन बिताने के लिए जन्म लेने का अवसर दिया जाता है। उदाहरणार्थ, यदि मनुष्य को नरक में रहने, मल तथा मूत्र खाने का दण्ड दिया जाता है, तो सबसे पहले उसे यमराज के लोक में ऐसी आदतों का अभ्यास कराया जाता है, फिर उसे वैसा ही शरीर दिया जाता है, जैसे कि एक शूकर का जिससे कि वह मल खा सके और यह सोचे कि वह जीवन का आनन्द उठा रहा है। पीछे यह बताया जा चुका है कि कैसी भी नारकीय परिस्थिति में बद्धजीव अपने को सुखी मानता है। अन्यथा यह सम्भव नहीं कि वह नारकीय जीवन भोग सकें।

एवं कुटुम्बं बिभ्राण उदरम्भर एव वा ।

विसृज्येहोभयं प्रेत्य भुङ्क्ते तत्फलमीदृशम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; कुटुम्बम्—परिवार को; बिभ्राणः—पालन करने वाला; उदरम्—पेट को; भरः—भरण करने वाला; एव—केवल; वा—अथवा; विसृज्य—त्याग कर; इह—यहाँ; उभयम्—दोनों; प्रेत्य—मृत्यु के बाद; भुङ्क्ते—भोगता है; तत्—उसका; फलम्—फल; ईदृशम्—ऐसा।

इस शरीर को त्यागने के पश्चात् वह व्यक्ति जो पापकर्मों द्वारा अपना तथा अपने परिवार के सदस्यों का पालन-पोषण करता है नारकीय जीवन बिताता है और उसके

साथ उसके परिवार वाले भी।

तात्पर्य : आधुनिक सभ्यता की यही भूल है कि इसमें मनुष्य अगले जीवन में विश्वास नहीं करता। किन्तु वह विश्वास करे अथवा न भी करे तो भी अगला जीवन होता है और यदि कोई वेद तथा पुराण जैसे शास्त्रों से सम्मत उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन नहीं बिताता तो उसे कष्ट भोगना पड़ता है। मनुष्य से निम्न योनियाँ अपने कर्मों के लिए उत्तरदायी नहीं होती, क्योंकि उन्हें एक निश्चित विधि से कर्म करना होता है, किन्तु मानवीय चेतना वाले विकसित जीवन में, यदि कोई अपने कर्मों के लिए उत्तरदायी नहीं बनता तो निश्चय ही उसे यहाँ पर वर्णित विधि के अनुसार नारकीय जीवन बिताना होगा।

एकः प्रपद्यते ध्वान्तं हित्वेदं स्वकलेवरम् ।
कुशलेतरपाथेयो भूतद्रोहेण यद्भूतम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

एकः—अकेला; प्रपद्यते—प्रवेश करता है; ध्वान्तम्—अन्धकार; हित्वा—छोड़कर; इदम्—यह; स्व—अपना; कलेवरम्—शरीर; कुशल-इतर—पाप; पाथेयः—सम्बल, रास्ते का खर्च; भूत—अन्य जीवों की; द्रोहेण—क्षति द्वारा; यत्—जो शरीर; भूतम्—पाला गया।

इस शरीर को त्याग कर वह अकेला नरक के अंधतम भागों में जाता है और अन्य जीवों के साथ ईर्ष्या करके उसने जो धन कमाया था वही पाथेय के रूप में उसके साथ जाता है।

तात्पर्य : जब मनुष्य अनुचित साधनों से धन कमाकर उस धन से अपने परिवार का तथा अपना पालन करता है, तो वह धन यद्यपि परिवार के कई सदस्यों द्वारा भोगा जाता है, किन्तु नरक तो उसे अकेले ही जाना होता है। जो व्यक्ति धन कमाकर या दूसरे की स्पर्धा करके जीवन का आनन्द उठाता है और जो अपने परिवार तथा मित्रों के साथ आनन्द उठाता है, उसे अकेले ही ऐसे हिंसक तथा अवैध जीवन के पापकर्मों का फल भोगना पड़ेगा। उदाहरणार्थ, यदि कोई मनुष्य किसी को मार कर कुछ धन प्राप्त करता है और उस धन से अपने परिवार का पोषण करता है, तो जो इस कमाये हुए काले धन का भोग करते हैं, वे भी अंशतः उत्तरदायी हैं और उन्हें भी नरक भेजा जाता है, किन्तु जो प्रमुख होता है उसे विशेष रूप से

दण्डित किया जाता है। भौतिक भोग का फल यही है कि पापफल ही उसके हाथ लगता है, धन नहीं। उसके द्वारा कमाया धन इसी संसार में रह जाता है और वह अपने साथ केवल कर्मफल ले जाता है।

इस संसार में भी यदि कोई मनुष्य किसी व्यक्ति की हत्या करके कुछ धन प्राप्त करता है, तो उसके परिवार को फाँसी नहीं दी जाती, यद्यपि उसके सदस्य पाप से दूषित रहते हैं। किन्तु जो व्यक्ति हत्या करता है और परिवार का पोषण करता है उसे ही हत्यारे के रूप में फाँसी दी जाती है। प्रत्यक्ष अपराधकर्ता अप्रत्यक्ष भोक्ता की अपेक्षा पापकर्मों के लिए अधिक उत्तरदायी है। अतः परम विद्वान् चाणक्य पण्डित कहते हैं कि मनुष्य के पास जो कुछ भी है उसे सत्-कार्य में या भगवान् के लिए व्यय कर देना चाहिए, क्योंकि कोई अपने साथ धन-दौलत नहीं ले जाता। धन-दौलत यहीं रही आती है और नष्ट हो जाती है। अतः या तो हम धन को त्यागें अन्यथा धन हमें त्यागेगा, किन्तु हम दोनों विलग होकर रहेंगे। जब तक धन हमारे पास है तब तक उसका सर्वोत्तम उपयोग यही है कि कृष्णभावनामृत प्राप्त करने में इसका व्यय किया जाय।

दैवेनासादितं तस्य शमलं निरये पुमान् ।

भुङ्क्ते कुटुम्बपोषस्य हतवित्त इवातुरः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

दैवेन—भगवान् की व्यवस्था से; आसादितम्—प्राप्त; तस्य—उसका; शमलम्—पापपूर्ण फल, कुफल; निरये—नारकीय अवस्था में; पुमान्—मनुष्य; भुङ्क्ते—भोगता है; कुटुम्ब-पोषस्य—परिवार के पोषण का; हत-वित्तः—जिसकी सम्पत्ति लुट गई हो; इव—सदृश; आतुरः—व्याकुल।

इस प्रकार भगवान् की व्यवस्था से, परिवार का पोषणकर्ता अपने पापकर्मों को भोगने के लिए नारकीय अवस्था में रखा जाता है मानो उसकी सारी सम्पत्ति लुट गई हो।

तात्पर्य : यहाँ पर उदाहरण दिया गया है कि पापी मनुष्य को वैसे ही कष्ट होता है, जिस प्रकार मनुष्य की सम्पत्ति लुटने पर होता है। बद्धजीव को अनेक जन्मों के बाद मनुष्य का शरीर प्राप्त होता है और यह एक अमूल्य निधि है। किन्तु यदि कोई मुक्ति प्राप्त करने के लिए इस जीवन का उपयोग नहीं करता वरन् अपने तथाकथित परिवार के पालन-पोषण में ही

लगाता है और इस तरह मूर्खतापूर्ण तथा अवैध कर्म करता रहता है, तो वह उस पुरुष के समान है, जो अपनी सारी सम्पत्ति लुट चुकने पर शोक करता है। सम्पत्ति लुट जाने पर शोक करने से क्या लाभ? किन्तु जब तक पास में सम्पत्ति रहे तब तक उसका समुचित उपयोग करके शाश्वत लाभ प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ यह तर्क किया जा सकता है कि जब मनुष्य पापकर्म के द्वारा अर्जित धन को छोड़ कर मर जाता है, तो अपने धन के साथ अपने पापकर्म भी छोड़ जाता है। किन्तु यहाँ यह विशेष उल्लेख है कि दैवी व्यवस्था (दैवेनासादितम्) से यद्यपि वह अपना धन छोड़े जाता है, किन्तु इसके प्रभाव को अपने साथ लेता जाता है। यदि कोई कुछ धन चुरावे और पकड़ा जाय तथा उस धन को राज्य के कानून के अनुसार भले ही वह लौटा दे, किन्तु उसे दण्ड भोगना ही पड़ता है। इसी प्रकार अपराध द्वारा अर्जित धन मरते समय भले ही यहाँ छूट जाय, किन्तु दैवी व्यवस्था के अनुसार इसके फल को अपने साथ लेता जाता है, अतः उसे नारकीय जीवन भोगना पड़ता है।

केवलेन ह्यधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुकः ।

याति जीवोऽन्धतामिस्रं चरमं तमसः पदम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

केवलेन—केवल, निर; हि—निश्चय ही; अधर्मेण—अधर्म कार्यों से; कुटुम्ब—परिवार; भरण—पालने के लिए; उत्सुकः—उत्सुक; याति—जाता है; जीवः—व्यक्ति; अन्ध-तामिस्रम्—अन्धतामिस्र नरक को; चरमम्—परम; तमसः—अंधकार का; पदम्—क्षेत्र।

अतः जो व्यक्ति केवल कुत्सित साधनों से अपने परिवार तथा कुटुम्बियों का पालन करने के लिए लालायित रहता है, वह निश्चय ही अन्धतामिस्र नामक गहनतम नरक में जाता है।

तात्पर्य : इस श्लोक में तीन शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। केवलेन का अर्थ है “कुत्सित साधनों से”, अधर्मेण का अर्थ है “पापपूर्ण अथवा अधार्मिक” और कुटुम्ब-भरण का अर्थ है “परिवार का पालन पोषण।” निस्सन्देह परिवार का पालन गृहस्थ का कर्तव्य है, किन्तु उसे शास्त्रसम्मत विधि से ही जीविका कमाना चाहिए। भगवद्गीता में बताया गया है कि भगवान् ने सामाजिक पद्धति को चार वर्णों या जातियों में उनके गुण तथा कर्म के अनुसार विभाजित

किया है। *भगवद्गीता* के अतिरिक्त, प्रत्येक समाज में मनुष्य अपने गुण तथा कार्य के अनुसार ही जाना जाता है। उदाहरणार्थ, लकड़ी का काम करने वाला बढ़ई कहलाता है तथा लोहे तथा निहाई का काम करने वाला लुहार कहलाता है। इसी प्रकार चिकित्सा तथा इंजीनियरी क्षेत्रों में लगे मनुष्यों के विशेष कार्य तथा उपाधियाँ होती हैं। परमेश्वर ने इन समस्त मानवीय कार्यों को चार वर्णों में विभाजित किया जिनके नाम हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। *भगवद्गीता* तथा अन्य वैदिक ग्रन्थों में इन चारों वर्णों के कर्तव्यों का उल्लेख है।

मनुष्य को अपनी योग्यता के अनुसार निष्ठापूर्वक काम करना चाहिए। उसे अनुचित ढंग से जिनके लिए वह योग्य नहीं है, जीविका अर्जित नहीं करनी चाहिए। यदि ब्राह्मण को धर्माचार्य के रूप में योग्यता प्राप्त नहीं है, किन्तु धर्माचार्य का कार्य करता है, जिसका कार्य है अपने अनुयायियों को आध्यात्मिक जीवन-शैली बताना, तो वह जनता को ठग रहा होता है। मनुष्य को ऐसे अनुचित साधनों से धन नहीं कमाना चाहिए। यही बात क्षत्रिय तथा वैश्य पर भी लागू होती है। इसका विशेष उल्लेख हुआ है कि जो लोग कृष्णभावनामृत में अग्रसर होना चाहते हैं उनकी जीविका के साधन अत्यन्त न्यायोचित तथा जटिलता-रहित होने चाहिए। यहाँ इसका उल्लेख है कि जो अनुचित साधनों से (*केवलेन*) जीविकोपार्जन करता है उसे गहनतम नरक में भेजा जाता है। अन्यथा यदि वह शास्त्रोक्त विधियों से तथा ईमानदारी के साथ परिवार का भरण करता है, तो पारिवारिक व्यक्ति बनने में किसी को आपत्ति नहीं होगी।

अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः ।

क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्राव्रजेच्छुचिः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

अधस्तात्—नीचे से; नर-लोकस्य—मनुष्य जन्म; यावतीः—जितनी; यातना—दण्ड, सजाएँ; आदयः—इत्यादि; क्रमशः—नियत क्रम; समनुक्रम्य—से होकर जाने पर; पुनः—फिर; अत्र—यहाँ, इस पृथ्वी पर; आव्रजेत्—लौट सकता है; शुचिः—शुद्ध।

समस्त कष्टकर नारकीय परिस्थितियों से तथा मनुष्य जन्म के पूर्व पशु-जीवन के निम्नतम रूपों को क्रमशः पार करते हुए और इस प्रकार अपने पापों को भोगते हुए, वह इस पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में पुनः जन्म लेता है।

तात्पर्य : जिस प्रकार से एक बन्दी को बन्दीगृह का कष्टमय जीवन बिताने के बाद पुनः मुक्त कर दिया जाता है उसी तरह जो व्यक्ति पहले अपवित्र तथा शरारतपूर्ण कर्म कर चुका होता है, वह नारकीय स्थितियों में रखा जाता है और विभिन्न प्रकार के नारकीय जीवन—यथा कुत्ते, बिल्ली तथा शूकर जैसे निम्न पशुओं के जीवन बिताने के बाद क्रमशः विकास क्रिया के द्वारा पुनः मनुष्य रूप में आता है। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि योगाभ्यास में लगा व्यक्ति कभी-कभी अच्छी तरह से उसे पूरा नहीं कर पाता और वह किसी न किसी कारण से नीचे गिर जाता है, किन्तु तो भी अगले जीवन में उसका मनुष्य होना निश्चित है। यह कहा गया है कि ऐसा व्यक्ति जो योग के पथ से च्युत होता है उसे किसी अत्यन्त धनी परिवार में या अत्यन्त पवित्र कुल में जन्म लेने का अवसर प्रदान किया जाता है। इससे यह अर्थ लगाया जाता है कि धनी परिवार किसी बड़े व्यापारी कुल का सूचक है, क्योंकि जो लोग व्यापार करते हैं, वे अत्यन्त धनी होते हैं। जो व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार में या परमेश्वर के साथ सम्बन्ध स्थापित करने (योग) में लगा रहता है, किन्तु उसे पूरा नहीं कर पाता तो उसे धनी परिवार में या कि पवित्र ब्राह्मण-कुल में जन्म लेने दिया जाता है। दोनों ही तरह से उसे अगले जीवन में मनुष्य-समाज में जन्म लेने की गारंटी रहती है। अतः यह निष्कर्ष निकला कि जो तामिस्र या अंधतामिस्र जैसे नरक का जीवन बिताना नहीं चाहता उसे कृष्णभक्ति की विधि अपनानी चाहिए, जो प्रथमकोटि की योगपद्धति है, क्योंकि यदि कोई उससे इस जीवन में पूर्ण कृष्णभावनामृत प्राप्त नहीं कर पाता तो अगले जन्म में मनुष्य परिवार में उसका जन्म निश्चित है। उसे नरक नहीं भेजा जा सकता। कृष्णभावनाभावित होना शुद्धतम जीवन है। यह सभी मनुष्यों को नरक की ओर जाकर कुत्तों या शूकरों के परिवार में जन्म लेकर नरक की ओर जाने से बचाती है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कंध के अन्तर्गत “भगवान् कपिल द्वारा विपरीत कर्मों का वर्णन” नामक तीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।